इतिहास के साथ यह अन्याय!!

प्रो. बी. एन. पाण्डेय

भूतपूर्व राज्यपाल एवं इतिहासकार

इतिहास के साथ यह अन्याय !!

प्रो० बी०एन० पाण्डेय
(भूतपूर्व राज्यपाल उडीसा एवं इतिहासकार)

मधुर सन्देश संगम
अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव जामिआनगर, नई दिल्ली-२५

दो शब्द

भारतीय इतिहास की यह विडम्बना है कि उसे कभी वास्तविकता के परिप्रेक्ष्य में शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टिकोण से नहीं देखा गया। अंग्रेज़ों ने विजित राष्ट्र पर अपना प्रभुत्व बनाए रखने के लिए 'फूट डालो और राज्य करो' (Devide And Rule) की नीति के कारण इतिहास को विकृत किया और अपने पीछे ऐसी टोली छोड़ गए जो सिर्फ़ उन्हीं का राग नहीं अलापती बल्कि उनकी योजना को उसने और आगे बढ़ाया और विकसित किया।

आज़ादी के बाद अंग्रेज़ों की नीति का अनुसरण करने में ही हमारे कुछ राजनीतिक और शैक्षिक विचारकों को भी अपना हित नज़र आया। राष्ट्रवाद के कुत्सित स्वार्थों की प्रेरणा से अपने विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में इसी विकृत इतिहास के द्वारा नई पीढ़ी के दिशा-निर्देशन का कार्य आरंभ किया गया। उन्होंने समाज को तोड़ने के लिए इतिहास को द्वेष की बीज के रूप में प्रयोग किया, जिससे समाज में एकजुट होकर मूल समस्या से संघर्ष करने की संगठित शक्ति बाक़ी न रहे। इस योजना को इतना सुचारू रूप से चलाया गया कि आज हर शहर और गाँव में नफ़रत और विद्वेष का ज़हर फैल गया है।

अत: आज की स्थिति किसी अचानक दुर्घटना का परिणाम नहीं है, वरन् वर्षों के सुनियोजित प्रयास से सींचे गए विष-वृक्ष का अनुकूल फल है। इसके बिना उन 'महारथियों' की स्वार्थरक्षा संभव नहीं।

वास्तविकता यह है कि मध्यकालीन भारतीय साहित्य और इतिहास को ग़लत दिशा देने का जो काम हुआ है उसके कई धरातल और कई दिशाएँ हैं। डॉ० बी०एन० पांडेयजी का यह प्रयास उसके एक छोटे अंश पर प्रकाश डालता है। इस दिशा में कुछ अन्य विद्वानों के कार्य भी सराहनीय हैं जो इस असत्य के घोर अंधकार में सत्य का चिराग़ बनकर वास्तविकता को दर्शाते हैं।

भारत के इतिहास का क्रमबद्ध संकलन सबसे पहले इलियट और डाउसन नामक दो अंग्रेज़ विद्वानों ने किया। सारी स्रोत-सामग्री में से घटनाओं को

चुन-चुन कर उसे एक मनोवांछित दिशा देना और घटनाओं की व्याख्या करना उनकी मौलिकता रही। किन्तु उन्होंने पुस्तक का नाम दिया– 'The history of India as told by its own historians' (भारतीय इतिहास-भारतीय इतिहासकारों के कथनानुकूल)। उनकी निर्धारित की हुई दिशा में अन्य विद्वानों ने उस काम को आगे बढ़ाया। भारतीय विद्वानों में सर यदुनाथ सरकार और पं० हरप्रसाद शास्त्री सरीखे विद्वानों ने उसमें चार चाँद लगाने का काम किया। ये लोग अंग्रेज़ों के अनुचर ही नहीं उनके भक्त भी थे। ऐसे ही लोगों ने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857) में भारतीयों के विरुद्ध अंग्रेज़ी सेना के सहयोग के लिए अपने विद्यालय को सैनिक बैरक में बदल दिया था।

अंग्रेज़ों ने अपने सशक्त सहयोगियों के बल पर इतिहास को ग़लत दिशा पर डाल दिया। समय बीतने के साथ ही सदियों से आपसी सहयोग और भाईचारे के साथ एक जगह बसनेवाले दो समुदायों के बीच की खाई इतनी चौड़ी हो गई कि लाखों मनुष्यों के रक्तपात और देश-विभाजन के साथ अंग्रेज़ बहादुर को सलामी देकर विदा तो कर दिया गया, किन्तु द्वेष का 'देवता' आज भी प्रतिष्ठित है। इस 'देवता' को प्रसन्न रखने के लिए आज भी नर-बलि दी जा रही है, सैकड़ों गाँव और नगर हवन किए जा रहे हैं और रथ-यात्राएँ आयोजित की जा रही हैं। देश का संविधान और सारे तंत्र मुखौटा डाले परोक्ष या प्रत्यक्ष उस 'देवता' का नमन कर रहे हैं।

क्या मानवता उस देवता के सामने घुटने टेक देगी ? कदापि नहीं। ऐसा इसलिए संभव नहीं कि समय की तेज़ धार अपने आगे कमज़ोर आधारवाली चट्टान को बहुत दिनों तक टिकने नहीं देती।

आशा है कि आदरणीय पाण्डेयजी द्वारा खोजे गये तथ्य से युवा पीढ़ी को नया प्रकाश मिलेगा। उन्हीं के सबल हाथों से एक सुन्दर भारत का नव-निर्माण संभव है। प्रभु से प्रार्थना है कि इस पुस्तिका के प्रकाशन से यह आशा पूरी हो।

–प्रकाशक

इतिहास के साथ यह अन्याय ! !

उड़ीसा के भूतपूर्व राज्यपाल, राज्यसभा के सदस्य और इतिहासकार प्रो. विश्म्भरनाथ पाण्डेय ने अपने अभिभाषण और लेखन में उन ऐतिहासिक तथ्यों और वृत्तान्तों को उजागर किया है, जिनसे भली-भांति स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास को मनमाने ढंग से तोड़ा-मरोड़ा गया है । उन्होंने कहा–

"अब मैं कुछ ऐसे उदाहरण पेश करता हूं, जिनसे यह स्पष्ट हो जायेगा कि ऐतिहासिक तथ्यों को कैसे विकृत किया जाता है ।

जब मैं इलाहाबाद में 1928 ई० में टीपू सुल्तान के सम्बन्ध में रिसर्च कर रहा था, तो ऐंग्लो-बंगाली कालेज के छात्र-संगठन के कुछ पदाधिकारी मेरे पास आए और अपने 'हिस्ट्री-एसोसिएशन' का उद्घाटन करने के लिए मुझको आमंत्रित किया । ये लोग कालेज से सीधे मेरे पास आए थे । उनके हाथों में कोर्स की किताबें भी थीं, संयोगवश मेरी निगाह उनकी इतिहास की किताब पर पड़ी । मैंने टीपू सुल्तान से संबंधित अध्याय खोला तो मुझे जिस वाक्य ने बहुत ज़्यादा आश्चर्य में डाल दिया, वह यह था :

"तीन हज़ार ब्राह्मणों ने आत्महत्या कर ली, क्योंकि टीपू उन्हें ज़बरदस्ती मुसलमान बनाना चाहता था ।"

इस पाठ्य-पुस्तक के लेखक महामहोपाध्याय डा. हरप्रसाद शास्त्री थे जो कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत के विभागाध्यक्ष थे । मैंने तुरन्त डा. शास्त्री को लिखा कि उन्होंने टीपू सुल्तान के सम्बन्ध में उपरोक्त वाक्य किस आधार पर और किस हवाले से लिखा है । कई पत्र लिखने के बाद उनका यह जवाब मिला

कि उन्होंने यह घटना 'मैसूर गज़ेटियर' (Mysore Gazetteer) से उद्धृत की है। मैसूर गज़ेटियर न तो इलाहाबाद में और न तो इम्पीरियल लाइब्रेरी, कलकत्ता में प्राप्त हो सका। तब मैंने मैसूर विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति सर बृजेन्द्र नाथ सील को लिखा कि डा. शास्त्री ने जो बात कही है, उसके बारे में जानकारी दें। उन्होंने मेरा पत्र प्रोफ़ेसर श्री कन्टइया के पास भेज दिया जो उस समय मैसूर गज़ेटियर का नया संस्करण तैयार कर रहे थे।

प्रोफ़ेसर श्री कन्टइया ने मुझे लिखा कि तीन हज़ार ब्राह्मणों की आत्महत्या की घटना 'मैसूर गज़ेटियर' में कहीं भी नहीं है और मैसूर के इतिहास के एक विद्यार्थी की हैसियत से उन्हें इस बात का पूरा यक़ीन है कि इस प्रकार की कोई घटना घटी ही नहीं है। उन्होंने मुझे सूचित किया कि टीपू सुल्तान के प्रधानमंत्री पुनैया नामक एक ब्राह्मण थे और उनके सेनापति भी एक ब्राह्मण कृष्णराव थे। उन्होंने मुझको ऐसे 156 मंदिरों की सूची भी भेजी जिन्हें टीपू सुल्तान वार्षिक अनुदान दिया करते थे। उन्होंने टीपू सुल्तान के तीस पत्रों की फ़ोटो कापियां भी भेजीं जो उन्होंने श्रृंगेरी मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य को लिखे थे और जिनके साथ सुल्तान के अति घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध थे। मैसूर के राजाओं की परम्परा के अनुसार टीपू सुल्तान प्रतिदिन नाश्ता करने के पहले रंगनाथ जी के मंदिर में जाते थे, जो श्रीरंगापटनम के क़िले में था। प्रोफ़ेसर श्री कन्टइया के विचार में डा. शास्त्री ने यह घटना कर्नल माइल्स की किताब 'हिस्ट्री आफ़ मैसूर' (मैसूर का इतिहास) से ली होगी। इसके लेखक का दावा था कि उसने अपनी किताब 'टीपू सुल्तान का इतिहास' एक प्राचीन फ़ारसी पांडुलिपि से अनूदित किया है, जो महारानी विक्टोरिया के निजी लाइब्रेरी में थी। खोज-बीन से मालूम हुआ कि महारानी की लाइब्रेरी में ऐसी कोई पांडुलिपि थी ही नहीं और कर्नल माइल्स की किताब की बहुत-सी बातें बिल्कुल ग़लत एवं मनगढ़ंत हैं।

डा. शास्त्री की किताब पश्चिम बंगाल, असम, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश एवं राजस्थान में पाठ्यक्रम के लिए स्वीकृत थी। मैंने कलकत्ता

विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति सर आशुतोष चौधरी को पत्र लिखा और इस सिलसिले में अपने सारे पत्र-व्यवहारों की नक़लें भेजीं और उनसे निवेदन किया कि इतिहास की इस पाठ्य-पुस्तक में टीपू सुल्तान से सम्बन्धित जो ग़लत और भ्रामक वाक्य आए हैं, उनके विरुद्ध समुचित कार्रवाई की जाए। सर आशुतोष चौधरी का शीघ्र ही यह जवाब आ गया कि डा. शास्त्री की उक्त पुस्तक को पाठ्यक्रम से निकाल दिया गया है। परन्तु मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि आत्महत्या की वही घटना 1972 ई० में भी उत्तर प्रदेश में जूनियर हाई स्कूल की कक्षाओं में इतिहास के पाठ्यक्रम की किताबों में उसी प्रकार मौजूद थी। इस सिलसिले में महात्मा गांधी की वह टिप्पणी भी पठनीय है जो उन्होंने अपने अख़बार 'यंग इंडिया' में 23 जनवरी, 1930 ई० के अंक में पृष्ठ 31 पर की थी। उन्होंने लिखा था कि—

"मैसूर के फ़तह अली (टीपू सुल्तान) को विदेशी इतिहासकारों ने इस प्रकार पेश किया है कि मानो वह धर्मान्धता का शिकार था। इन इतिहासकारों ने लिखा है कि उसने अपनी हिन्दू प्रजा पर ज़ुल्म ढाए और उन्हें ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया, जबकि वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत थी। हिन्दू प्रजा के साथ उसके बहुत अच्छे सम्बन्ध थे।..... मैसूर राज्य (अब कर्नाटक) के पुरातत्व विभाग (Archaeology Department) के पास ऐसे तीस पत्र हैं, जो टीपू सुल्तान ने श्रृंगेरी मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य को 1793 ई० में लिखे थे। इनमें से एक पत्र में टीपू सुल्तान ने शंकराचार्य के पत्र की प्राप्ति का उल्लेख करते हुए उनसे निवेदन किया है कि वे उसकी और सारी दुनिया की भलाई, कल्याण और ख़ुशहाली के लिए तपस्या और प्रार्थना करें। अन्त में उसने शंकराचार्य से यह भी निवेदन किया है कि वे मैसूर लौट आएँ, क्योंकि किसी देश में अच्छे लोगों के रहने से वर्षा होती है, फ़सल अच्छी होती है और ख़ुशहाली आती है।"

यह पत्र भारत के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में लिखे जाने के योग्य है। 'यंग इण्डिया' में आगे कहा गया है—

"टीपू सुल्तान ने हिन्दू मन्दिरों विशेष रूप से श्री वेंकटरमण, श्रीनिवास और श्रीरंगनाथ मन्दिरों को ज़मीनें एवं अन्य वस्तुओं के रूप में बहुमूल्य उपहार दिए। कुछ मन्दिर उसके महलों के अहाते में थे यह उसके खुले ज़ेहन, उदारता एवं सहिष्णुता का जीता-जागता प्रमाण है। इससे यह वास्तविकता उजागर होती है कि टीपू एक महान शहीद था। जो किसी भी दृष्टि से आज़ादी की राह का हक़ीक़ी शहीद माना जाएगा, उसे अपनी इबादत में हिन्दू मन्दिरों की घंटियों की आवाज़ से कोई परेशानी महसूस नहीं होती थी। टीपू ने आज़ादी के लिए लड़ते हुए जान दे दी और दुश्मन के सामने हथियार डालने के प्रस्ताव को सिरे से ठुकरा दिया। जब टीपू की लाश उन अज्ञात फ़ौजियों की लाशों में पाई गई तो देखा गया कि मौत के बाद भी उसके हाथ में तलवार थी– वह तलवार जो आज़ादी हासिल करने का ज़रिया थी। उसके ये ऐतिहासिक शब्द आज भी याद रखने के योग्य हैं : 'शेर की एक दिन की ज़िंदगी लोमड़ी के सौ सालों की ज़िंदगी से बेहतर है।' उसकी शान में कही गई एक कविता की वे पंक्तियां भी याद रखे जाने योग्य हैं, जिनमें कहा गया है कि 'ख़ुदाया, जंग के ख़ून बरसाते बादलों के नीचे मर जाना, लज्जा और बदनामी की ज़िंदगी जीने से बेहतर है।'

इसी प्रकार जब मैं इलाहाबाद नगरपालिका का चेयरमैन था (1948 ई० से 1953 ई० तक) तो मेरे सामने दाख़िल-ख़ारिज का एक मामला लाया गया। यह मामला सोमेश्वर नाथ महादेव मन्दिर से संबंधित जायदाद के बारे में था। मन्दिर के महंत की मृत्यु के बाद उस जायदाद के दो दावेदार खड़े हो गए थे। एक दावेदार ने कुछ दस्तावेज़ दाख़िल किये जो उसके ख़ानदान में बहुत दिनों से चले आ रहे थे। इन दस्तावेज़ों में शहंशाह औरंगज़ेब के फ़रमान भी थे। औरंगज़ेब ने इस मन्दिर को जागीर और नक़द अनुदान दिया था। मैंने सोचा कि ये फ़रमान जाली होंगे। मुझे आश्चर्य हुआ कि यह कैसे हो सकता है कि औरंगज़ेब जो मन्दिरों को तोड़ने के लिए प्रसिद्ध है, वह एक मन्दिर को यह कह कर जागीर दे सकता है कि यह जागीर पूजा और भोग के लिए दी जा रही है। आख़िर औरंगज़ेब कैसे बुतपरस्ती के साथ अपने को शरीक कर सकता था।

मुझे यक़ीन था कि ये दस्तावेज़ जाली हैं, परन्तु कोई निर्णय लेने से पहले मैंने डा. सर तेज बहादुर सप्रू से राय लेना उचित समझा । वे अरबी और फ़ारसी के अच्छे जानकार थे । मैंने दस्तावेज़ें उनके सामने पेश करके उनकी राय मालूम की तो उन्होंने दस्तावेज़ों का अध्ययन करने के बाद कहा कि औरंगज़ेब के ये फ़रमान असली और वास्तविक हैं । इसके बाद उन्होंने अपने मुन्शी से बनारस के जंगमबाड़ी शिव मन्दिर की फ़ाइल लाने को कहा । यह मुक़दमा इलाहाबाद हाईकोर्ट में 15 साल से विचाराधीन था । जंगमबाड़ी मन्दिर के महंत के पास भी औरंगज़ेब के कई फ़रमान थे, जिनमें मन्दिर को जागीर दी गई थी ।

इन दस्तावेज़ों ने औरंगज़ेब की एक नई तस्वीर मेरे सामने पेश की, उससे मैं आश्चर्य में पड़ गया । डाक्टर सप्रू की सलाह पर मैंने भारत के विभिन्न प्रमुख मन्दिरों के महंतों के पास पत्र भेज कर उनसे निवेदन किया कि यदि उनके पास औरंगज़ेब के कुछ फ़रमान हों जिनमें उन मन्दिरों को जागीरें दी गई हों तो वे कृपा करके उनकी फोटो-स्टेट कापियां मेरे पास भेज दें । अब मेरे सामने एक और आश्चर्य की बात आई । उज्जैन के महाकालेश्वर मन्दिर, चित्रकूट के बालाजी मन्दिर, गौहाटी के उमानन्द मन्दिर, शत्रुन्जाई के जैन मन्दिर और उत्तर भारत में फैले हुए अन्य प्रमुख मन्दिरों एवं गुरुद्वारों से सम्बन्धित जागीरों के लिए औरंगज़ेब के फ़रमानों की नक़लें मुझे प्राप्त हुईं । ये फ़रमान 1065 हि० से 1091 हि०, अर्थात् 1659 से 1685 ई० के बीच जारी किए गए थे ।

हालांकि हिन्दुओं और उनके मन्दिरों के प्रति औरंगज़ेब के उदार रवैये की ये कुछ मिसालें हैं, फिर भी इनसे यह प्रमाणित हो जाता है कि इतिहासकारों ने उसके सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह पक्षपात पर आधारित है और इससे उसकी तस्वीर का एक ही रुख़ सामने लाया गया है । भारत एक विशाल देश है, जिसमें हज़ारों मन्दिर चारों ओर फैले हुए हैं । यदि सही ढ़ंग से खोजबीन की जाए तो मुझे विश्वास है कि और बहुत-से ऐसे उदाहरण मिल जाऐंगे जिनसे औरंगज़ेब का ग़ैर-मुस्लिमों के प्रति उदार व्यवहार का पता चलेगा ।

औरंगज़ेब के फ़रमानों की जांच-पड़ताल के सिलसिले में मेरा सम्पर्क श्री ज्ञानचन्द्र और पटना म्यूज़ियम के भूतपूर्व क्यूरेटर डा० पी०एल० गुप्ता से हुआ। ये महानुभाव भी औरंगज़ेब के विषय में ऐतिहासिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण रिसर्च कर रहे थे। मुझे ख़ुशी हुई कि कुछ अन्य अनुसन्धानकर्ता भी सच्चाई को तलाश करने में व्यस्त हैं और काफ़ी बदनाम औरंगज़ेब की तस्वीर को साफ़ करने में अपना योगदान दे रहे हैं। औरंगज़ेब, जिसे पक्षपाती इतिहासकारों ने भारत में मुस्लिम हुकूमत का प्रतीक मान रखा है। उसके बारे में वे क्या विचार रखते हैं इसके विषय में यहां तक कि शिबली जैसे इतिहास गवेषी कवि को कहना पड़ा :

तुम्हें ले-दे के सारी दास्तां में याद है इतना।
कि औरंगज़ेब हिन्दू-कुश था, ज़ालिम था, सितमगर था॥

औरंगज़ेब पर हिन्दू-दुश्मनी के आरोप के सम्बन्ध में जिस फ़रमान को बहुत उछाला गया है, वह 'फ़रमाने-बनारस' के नाम से प्रसिद्ध है। यह फ़रमान बनारस के मुहल्ला गौरी के एक ब्राह्मण परिवार से संबंधित है। 1905 ई० में इसे गोपी उपाध्याय के नवासे मंगल पाण्डेय ने सिटी मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया था। इसे पहली बार 'एशियाटिक-सोसाइटी' बंगाल के जर्नल (पत्रिका) ने 1911 ई० में प्रकाशित किया था। फलस्वरूप रिसर्च करनेवालों का ध्यान इधर गया। तब से इतिहासकार प्राय: इसका हवाला देते आ रहे हैं और वे इसके आधार पर औरंगज़ेब पर आरोप लगाते हैं कि उसने हिन्दू मन्दिरों के निर्माण पर प्रतिबंध लगा दिया था, जबकि इस फ़रमान का वास्तविक महत्व उनकी निगाहों से ओझल रह जाता है।

यह लिखित फ़रमान औरंगज़ेब ने 15 जुमादुल-अव्वल 1065 हि० (10 मार्च 1659 ई०) को बनारस के स्थानीय अधिकारी के नाम भेजा था जो एक ब्राह्मण की शिकायत के सिलसिले में जारी किया गया था। वह ब्राह्मण एक मन्दिर का महंत था और कुछ लोग उसे परेशान कर रहे थे। फ़रमान में कहा गया है :

"अबुल हसन को हमारी शाही उदारता का क़ायल रहते हुए यह जानना चाहिए कि हमारी स्वाभाविक दयालुता और प्राकृतिक न्याय के अनुसार हमारा सारा अनथक संघर्ष और न्यायप्रिय इरादों का उद्देश्य जन-कल्याण को बढ़ावा देना है और प्रत्येक उच्च एवं निम्न वर्गों के हालात को बेहतर बनाना है। अपने पवित्र क़ानून के अनुसार हमने फ़ैसला किया है कि प्राचीन मन्दिरों को तबाह और बर्बाद नहीं किया जाय, अलबत्ता नए मन्दिर न बनाए जाएँ।

हमारे इस न्याय पर आधारित काल में हमारे प्रतिष्ठित एवं पवित्र दरबार में यह सूचना पहुंची है कि कुछ लोग बनारस शहर और उसके आस-पास के हिन्दू नागरिकों और मन्दिरों के ब्राह्मणों-पुरोहितों को परेशान कर रहे हैं तथा उनके मामलों में दख़ल दे रहे हैं, जबकि ये प्राचीन मन्दिर उन्हीं की देख-रेख में हैं। इसके अतिरिक्त वे चाहते हैं कि इन ब्राह्मणों को इनके पुराने पदों से हटा दें। यह दख़लंदाज़ी इस समुदाय के लिए परेशानी का कारण है।

इसलिए यह हमारा फ़रमान है कि हमारा शाही हुक्म पहुंचते ही तुम हिदायत जारी कर दो कि कोई भी व्यक्ति ग़ैर-क़ानूनी रूप से दख़लंदाज़ी न करे और न उन स्थानों के ब्राह्मणों एवं अन्य हिन्दू नागरिकों को परेशान करे। ताकि पहले की तरह उनका क़ब्ज़ा बरक़रार रहे और पूरे मनोयोग से वे हमारी ईश-प्रदत्त सल्तनत के लिए प्रार्थना करते रहें। इस हुक्म को तुरन्त लागू किया जाये।"

इस फ़रमान से बिल्कुल स्पष्ट है कि औरंगज़ेब ने नए मन्दिरों के निर्माण के विरुद्ध कोई नया हुक्म जारी नहीं किया, बल्कि उसने केवल पहले से चली आ रही परम्परा का हवाला दिया और उस परम्परा की पाबन्दी पर ज़ोर दिया। पहले से मौजूद मन्दिरों को ध्वस्त करने का उसने कठोरता से विरोध किया। इस फ़रमान से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वह हिन्दू प्रजा को सुख-शान्ति से जीवन व्यतीत करने का अवसर देने का इच्छुक था।

यह अपने जैसा केवल एक ही फ़रमान नहीं है। बनारस में ही एक और

फ़रमान मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि औरंगज़ेब वास्तव में चाहता था कि हिन्दू सुख-शान्ति के साथ जीवन व्यतीत कर सकें। यह फ़रमान इस प्रकार है :

"रामनगर (बनारस) के महाराजाधिराज राजा रामसिंह ने हमारे दरबार में अर्ज़ी पेश की है कि उनके पिता ने गंगा नदी के किनारे अपने धार्मिक गुरु भगवत गोसाईं के निवास के लिए एक मकान बनवाया था। अब कुछ लोग गोसाईं को परेशान कर रहे हैं। अतः यह शाही फ़रमान जारी किया जाता है कि इस फ़रमान के पहुंचते ही सभी वर्तमान एवं आने वाले अधिकारी इस बात का पूरा ध्यान रखें कि कोई भी व्यक्ति गोसाईं को परेशान एवं डरा-धमका न सके, और न उनके मामले में हस्तक्षेप करे, ताकि वे पूरे मनोयोग के साथ हमारी ईश-प्रदत्त सल्तनत के स्थायित्व के लिए प्रार्थना करते रहें। इस फ़रमान पर तुरंत अमल किया जाए।" (तारीख़ —17 रबी उस्सानी 1091 हि०)।

जंगमबाड़ी मठ के महंत के पास मौजूद कुछ फ़रमानों से पता चलता है कि औरंगज़ेब कभी यह सहन नहीं करता था कि उसकी प्रजा के अधिकार किसी प्रकार से भी छीने जाएँ, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान। वह अपराधियों के साथ सख़्ती से पेश आता था। इन फ़रमानों में एक जंगम लोगों (शैव सम्प्रदाय के एक मत के लोग) की ओर से एक मुसलमान नागरिक नज़ीर बेग के विरुद्ध शिकायत के सिलसिले में है। यह मामला औरंगज़ेब के दरबार में लाया गया, जिस पर शाही हुक्म दिया गया कि बनारस सूबा इलाहाबाद के अफ़सरों को सूचित किया जाता है कि परगना बनारस के नागरिकों अर्जुनमल और जंगमियों ने शिकायत की है कि बनारस के एक नागरिक नज़ीर बेग ने क़स्बा बनारस में उनकी पांच हवेलियों पर क़ब्ज़ा कर लिया है। उन्हें हुक्म दिया जाता है कि यदि शिकायत सच्ची पाई जाए और जायदाद की मिल्कियत का अधिकार प्रमाणित हो जाए तो नज़ीर बेग को उन हवेलियों में दाख़िल न होने दिया जाए, ताकि जंगमियों को भविष्य में अपनी शिकायत दूर करवाने के लिए हमारे दरबार में न आना पड़े।

इस फ़रमान पर 11 शाबान, 13 जुलूस (1672 ई०) की तारीख़ दर्ज है। इसी मठ के पास मौजूद एक-दूसरे फ़रमान में जिस पर पहली रबीउल-अव्वल 1078 हि० की तारीख़ दर्ज है, यह उल्लेख है कि ज़मीन का क़ब्ज़ा जंगमियों को दिया गया। फ़रमान में है—

"परगना हवेली बनारस के सभी वर्तमान और भावी जागीरदारों एवं करोड़ियों को सूचित किया जाता है कि शहंशाह के हुक्म से 178 बीघा ज़मीन जंगमियों को दी गई। पुराने अफ़सरों ने इसकी पुष्टि की थी और उस समय के परगना के मालिक की मुहर के साथ यह सबूत पेश किया गया है कि ज़मीन पर उन्हीं का हक़ है। अतः शहंशाह की जान के सदक़े के रूप में यह ज़मीन उन्हें दे दी गई। ख़रीफ़ की फसल के प्रारम्भ से ज़मीन पर उनका क़ब्ज़ा बहाल किया जाय और फिर किसी प्रकार की दख़लंदाज़ी न होने दी जाए, ताकि जंगमी लोग उसकी आमदनी से अपनी देख-रेख कर सकें।"

इस फ़रमान से केवल यही पता नहीं चलता कि औरंगज़ेब स्वभाव से न्यायप्रिय था, बल्कि यह भी साफ़ नज़र आता है कि वह इस तरह की जायदादों के बंटवारे में हिन्दू धार्मिक सेवकों के साथ कोई भेदभाव नहीं बरतता था। जंगमियों को 178 बीघा ज़मीन संभवतः स्वयं औरंगज़ेब ही ने प्रदान की थी, क्योंकि एक दूसरे फ़रमान (तिथि 5 रमज़ान, 1071 हि०) में इसका स्पष्टीकरण किया गया है कि यह ज़मीन मालगुज़ारी मुक्त है।

औरंगज़ेब ने एक दूसरे फ़रमान (1098 हि०) के द्वारा एक-दूसरी हिन्दू धार्मिक संस्था को भी जागीर प्रदान की। फ़रमान में कहा गया है :

"बनारस में गंगा नदी के किनारे बेनी-माधो घाट पर दो प्लाट ख़ाली हैं एक मर्कज़ी मस्जिद के किनारे रामजीवन गोसाईं के घर के सामने और दूसरा उससे पहले। ये प्लाट बैतुल-माल की मिल्कियत है। हमने यह प्लाट रामजीवन गोसाईं और उनके लड़के को 'इनाम' के रूप में प्रदान किया, ताकि उक्त प्लाटों पर ब्राह्मणों एवं फ़क़ीरों के लिए रिहायशी मकान बनाने के बाद वे ख़ुदा की

इबादत और हमारी ईश-प्रदत्त सल्तनत के स्थायित्व के लिए दुआ और प्रार्थना करने में लग जाएं। हमारे बेटों, वज़ीरों, अमीरों, उच्च पदाधिकारियों, दरोग़ा और वर्तमान एवं भावी कोतवालों के लिए अनिवार्य है कि वे इस आदेश के पालन का ध्यान रखें और उक्त प्लाट, उपर्युक्त व्यक्ति और उसके वारिसों के क़ब्ज़े ही में रहने दें और उनसे न कोई मालगुज़ारी या टैक्स लिया जाए और न उनसे हर साल नई सनद मांगी जाए।"

लगता है औरंगज़ेब को अपनी प्रजा की धार्मिक भावनाओं के सम्मान का बहुत अधिक ध्यान रहता था। हमारे पास औरंगज़ेब का एक फ़रमान (2 सफ़र, 9 जुलूस) है जो असम के शहर गोहाटी के उमानन्द मन्दिर के पुजारी सुदामन ब्राह्मण के नाम है। असम के हिन्दू राजाओं की ओर से इस मन्दिर और उसके पुजारी को ज़मीन का एक टुकड़ा और कुछ जंगलों की आमदनी जागीर के रूप में दी गई थी, ताकि भोग का ख़र्च पूरा किया जा सके और पुजारी की आजीविका चल सके। जब यह प्रांत औरंगज़ेब के शासन-क्षेत्र में आया, तो उसने तुरंत ही एक फ़रमान के द्वारा इस जागीर को यथावत रखने का आदेश दिया।

हिन्दुओं और उनके धर्म के साथ औरंगज़ेब की सहिष्णुता और उदारता का एक और सबूत उज्जैन के महाकालेश्वर मन्दिर के पुजारियों से मिलता है। यह शिवजी के प्रमुख मन्दिरों में से एक है, जहां दिन-रात दीप प्रज्वलित रहता है। इसके लिए काफ़ी दिनों से प्रतिदिन चार सेर घी वहां की सरकार की ओर से उपलब्ध कराया जाता था और पुजारी कहते हैं कि यह सिलसिला मुग़ल काल में भी जारी रहा। औरंगज़ेब ने भी इस परम्परा का सम्मान किया। इस सिलसिले में पुजारियों के पास दुर्भाग्य से कोई फ़रमान तो नहीं उपलब्ध है, परन्तु एक आदेश की नक़ल ज़रूर है जो औरंगज़ेब के काल में शहज़ादा मुराद बख़्श की तरफ़ से जारी किया गया था। (5 शव्वाल 1061 हि०) को यह आदेश शहंशाह की ओर से शहज़ादा ने मन्दिर के पुजारी देव नारायण के एक आवेदन

पर जारी किया था। वास्तविकता की पुष्टि के बाद इस आदेश में कहा गया है कि मन्दिर के दीप के लिए चबूतरा कोतवाल के तहसीलदार चार सेर (अकबरी) घी प्रतिदिन के हिसाब से उपलब्ध कराएं। इसकी नक़ल मूल आदेश के जारी होने के 93 साल बाद (1153 हिजरी) में मुहम्मद सअदुल्लाह ने पुनः जारी की।

साधारणतया इतिहासकार इसका बहुत उल्लेख करते हैं कि अहमदाबाद में नागर सेठ के बनवाए हुए चिन्तामणि मन्दिर को ध्वस्त किया गया, परन्तु इस वास्तविकता पर पर्दा डाल देते हैं कि उसी औरंगज़ेब ने उसी नागर सेठ के बनवाए हुए शत्रुन्जया और आबू मन्दिरों को काफ़ी बड़ी जागीरें प्रदान कीं।

निःसंदेह इतिहास से यह प्रमाणित होता है कि औरंगज़ेब ने बनारस के विश्वनाथ मन्दिर और गोलकुण्डा की जामा-मस्जिद को ढा देने का आदेश दिया था, परन्तु इसका कारण कुछ और ही था। विश्वनाथ मन्दिर के सिलसिले में घटनाक्रम यह बयान किया जाता है कि जब औरंगज़ेब बंगाल जाते हुए बनारस के पास से गुज़र रहा था, तो उसके क़ाफ़िले में शामिल हिन्दू राजाओं ने बादशाह से निवेदन किया कि वहां क़ाफ़िला एक दिन ठहर जाए तो उनकी रानियां बनारस जा कर गंगा नदी में स्नान कर लेंगी और विश्वनाथ जी के मन्दिर में श्रद्धा सुमन भी अर्पित कर आएँगी। औरंगज़ेब ने तुरंत ही यह निवेदन स्वीकार कर लिया और क़ाफ़िले के पड़ाव से बनारस तक पांच मील के रास्ते पर फ़ौजी पहरा बैठा दिया। रानियां पालकियों में सवार होकर गईं और स्नान एवं पूजा के बाद वापस आ गईं, परन्तु एक रानी (कच्छ की महारानी) वापस नहीं आई, तो उनकी बड़ी तलाश हुई, लेकिन पता नहीं चल सका। जब औरंगज़ेब को मालूम हुआ तो उसे बहुत ग़ुस्सा आया और उसने अपने फ़ौज के बड़े-बड़े अफ़सरों को तलाश के लिए भेजा। आख़िर में उन अफ़सरों ने देखा कि गणेश की मूर्ति जो दीवार में जड़ी हुई है, हिलती है। उन्होंने मूर्ति हटवा कर देखा तो तहख़ाने की सीढ़ी मिली और गुमशुदा रानी उसी में पड़ी रो रही थी। उसकी इज़्ज़त भी लूटी

गई थी और उसके आभूषण भी छीन लिए गए थे। यह तहख़ाना विश्वनाथ जी की मूर्ति के ठीक नीचे था। राजाओं ने इस हरकत पर अपनी नाराज़गी जताई और विरोध प्रकट किया। चूंकि यह बहुत घिनौना अपराध था, इसलिए उन्होंने कड़ी से कड़ी कार्रवाई करने की मांग की। उनकी मांग पर औरंगज़ेब ने आदेश दिया कि चूंकि पवित्र-स्थल को अपवित्र किया जा चुका है। अतः विश्वनाथ जी की मूर्ति को कहीं और ले जा कर स्थापित कर दिया जाए और मन्दिर को गिरा कर ज़मीन को बराबर कर दिया जाय और महंत को गिरफ़्तार कर लिया जाए।

डाक्टर पट्टाभि सीता रमैया ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द फ़ेदर्स एण्ड द स्टोन्स' में इस घटना को दस्तावेज़ों के आधार पर प्रमाणित किया है। पटना म्यूज़ियम के पूर्व क्यूरेटर डा. पी० एल० गुप्ता ने भी इस घटना की पुष्टि की है।

गोलकुण्डा की जामा-मस्जिद की घटना यह है कि वहां के राजा जो तानाशाह के नाम से प्रसिद्ध थे, रियासत की मालगुज़ारी वसूल करने के बाद दिल्ली का हिस्सा नहीं भेजते थे। कुछ ही वर्षों में यह रक़म करोड़ों की हो गई। तानाशाह ने यह ख़ज़ाना एक जगह ज़मीन में गाड़ कर उस पर मस्जिद बनवा दी। जब औरंगज़ेब को इसका पता चला तो उसने आदेश दे दिया कि यह मस्जिद गिरा दी जाए। अतः गड़ा हुआ ख़ज़ाना निकाल कर उसे जन-कल्याण के कामों में ख़र्च किया गया।

ये दोनों मिसालें यह साबित करने के लिए काफ़ी हैं कि औरंगज़ेब न्याय के मामले में मन्दिर और मस्जिद में कोई फ़र्क़ नहीं समझता था।

"दुर्भाग्य से मध्यकाल और आधुनिक काल के भारतीय इतिहास की घटनाओं एवं चरित्रों को इस प्रकार तोड़-मरोड़ कर मनगढ़ंत अंदाज़ में पेश किया जाता रहा है कि झूठ ही ईश्वरीय आदेश की सच्चाई की तरह स्वीकार किया जाने लगा, और उन लोगों को दोषी ठहराया जाने लगा जो तथ्य और मनगढ़ंत बातों में अन्तर करते हैं। आज भी साम्प्रदायिक एवं स्वार्थी तत्व इतिहास को तोड़ने-मरोड़ने और उसे ग़लत रंग देने में लगे हुए हैं।"